एम जी अग्रवाल

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

(बी. पी. सिन्हा, सी. जे., पी. बी. गजेन्द्रगडकर, के. एन.वांचू, एन. राजगोपाला अयंगर और टी. एल. वेंकटरामा अय्यर, जे. जे)

दोषमुक्ति के विरूद्ध अपील-निर्दोषता की उपधारणा- उच्च न्यायालय की शक्ति-दोषसिद्धि, परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर कब आधारित हो सकती है- दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का अधिनियम 5), धारा 423 (1) (ए) भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का अधिनियम 45), धारा 120 बी।

अपीलार्थी अग्रवाल एक आयकर अधिकारी थे और अपीलार्थी कुलकर्णी, उनके अधीन एक क्लर्क थे। उन पर विभाग के एक अन्य क्लर्क के साथ कई आरोपों में मुकदमा चलाया गया, जिनमें मुख्य आरोप यह था कि उन्होंने फर्जी व्यक्तियों के नाम पर आयकर रिफंड आदेशों के रूप में अपने लिए आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए आपराधिक साजिश रची थी और इस प्रकार की धोखाधड़ी करके बड़ी मात्रा में सरकारी धन का दुरुपयोग किया गया। विचारण न्यायाधीश ने माना कि अभियोजन पक्ष आपराधिक षडयंत्र साबित करने में विफल रहा और अपीलार्थियों को धारा 120 बी भारतीय दंड संहिता के आरोप से बरी कर दिया और दूसरे अपीलार्थी को

भारतीय दंड संहिता के तहत अन्य सभी आरोपों से बरी कर दिया गया, लेकिन तीसरे व्यक्ति को भी धारा 120बी भारतीय दंड संहिता के तहत बरी कर दिया गया जबकि उसे अन्य अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया क्योंकि उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। राज्य ने इस दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील की। उच्च न्यायालय ने आंशिक रूप से अपील की अनुमति दी और सभी आरोपी व्यक्तियों को धारा 120बी भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी ठहराया और दूसरे अपीलार्थी को अन्य आरोपों में भी दोषी ठहराया।

माना गया कि इसमें को कोई संदेह नहीं है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 423(1) (ए) के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां उतनी ही व्यापक थी जितनी दोषमुक्ति के आदेश से निपटने में धारा 423(1) (बी) दोषसिद्धि के आदेश के संबंध में; लेकिन दोषमुक्ति के खिलाफ अपील से निपटने में अदालत को इस तथ्य को ध्यान में रखना होगा कि आरोपी व्यक्ति के पक्ष में बेगुनाही की प्रारंभिक धारणा दोषमुक्ति के आदेश से मजबूत होती है; लेकिन अदालत कितनी भी सतर्क या चौकस क्यों न हो, फिर भी वह अभियोजन पक्ष द्वारा उसके सामने पेश किये गये सबूतों के आधार पर अभियुक्त के अपराध या निर्दोषता के बारे में अपने निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए स्वतंत्र थी।

शिव स्वरूप बनाम किंग एम्परर, (1934) एल. आर. 61 आई. ए. 398 और नूर मोहम्मद बनाम एम्परर, ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 151 के संदर्भ में।

इस न्यायालय के कुछ निश्चित मामलों में इस बिंदु पर की गई टिप्पणीयों का उद्देश्य कोई कठोर या अनम्य नियम निर्धारित करना नहीं था, जो ऐसी सभी अपीलों को नियंत्रित करे और यह आवश्यक नहीं है कि दोषमुक्ति के निर्णय को पलटने से पहले उच्च न्यायालय को निष्कर्षों को विकृत बताना चाहिए।

सूरजपाल सिंह बनाम राज्य (1952) एस.सी.आर. 193 ओर अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1953) एस.सी.आर. 418 विचार किया गया।

सांवल सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1961), 3 एस. सी. आर. 120 और हरबंस सिंह बनाम पंजाब राज्य (1962), अनुपूरक 1 एस. सी. आर. 104 निर्दिष्ट किया गया।

यह स्थापित विधि है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर दोषसिद्धि उचित रूप से स्थापित की जा सकती है यदि यह अभियुक्त की

बेगुनाही के साथ पूरी तरह से असंगत है और केवल जुर्म के अनुरूप है। यदि साबित की गई परिस्थितियाँ निर्दोषता या अपराध के अनुरूप हैं, तो आरोपी व्यक्ति संदेह का लाभ पाने का हकदार है लेकिन इस सिद्धांत को

लागू करने में प्राथमिक तथ्यों जिन्हें सामान्य तौर पर साबित किया जाना है और उनके आधार पर जुर्म की उपधारणा के बीच अंतर किया जाना चाहिए। यह समस्या के बाद के पहलू के संबंध में है कि संदेह के लाभ का सिद्धांत लागू हो सकता है और अपराध की उपधारणा तभी की जा सकती है जब सिद्ध तथ्य निर्दोषता के साथ पूरी तरह से असंगत हों, और केवल अपराध के साथ अनुरूप हों।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक 1959 की अपील संख्या 176 और 1960 अपील संख्या 40

बॉम्बे उच्च न्यायालय के 26 अगस्त, 1959 का फैसले और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील 1958 का Cr. A. नंबर 1638/1658.

अपीलार्थी की और से ए. एस. आर. चारी, जे. बी. दादाचंजी, ओ. सी. माथुर और रविंद्र नारायण (सी.आर.ए. नंबर 59/176)

अपीलार्थी की ओर से फ्रेनी पारेख और के. आर. चौधरी (सी.आर.ए. संख्या 40/60)

उत्तरदाताओं की ओर से जय गोपाल सेठी, आर.एल.मेहता ओर आर.एच.ढेबर।

न्यायालय का फैसला दिनांक 24 अप्रेल 1962 को गजेंद्रगढकर द्वारा पारित किया गया- एक आपराधिक षडयंत्र जिसके लिए, अभियोजन पक्ष के अनुसार, एम.जी.अग्रवाल,

एस.सी.आर. एम.के कुलकर्णी और एन. लक्ष्मीनारायण जिन्हें इसके बाद क्रमशः अभियुक्त संख्या 1, 2 और 3 से संबोधित किया गया है, दिसंबर, 1954 और जून 1955 के बीच बॉम्बे में पक्षकार थे, जिसने आपराधिक कार्यवाही को जन्म दिया है, जिसमें से दो वर्तमान अपीलें सामनें आई हैं। प्रासंगिक समय, तीनों आरोपी व्यक्ति ग्रेटर बॉम्बे में आयकर अधिकारी, वार्ड नं. ए-III के कार्यालय से जुडे हुए थे। आरोपी नं. 1 को प्रथम आयकर अधिकारी के रूप में पदस्थापित किया गया था, और आरोपी नं. 2 और 3 ने उसके अधीन क्रमशः दूसरे और तीसरे आंकलन लिपिक के रूप में काम किया। इन व्यक्तियों के खिलाफ मुख्य आरोप यह था कि संबंधित अवधि के दौरान, उन्होंने भ्रष्ट और अवैध तरीकों से अवैध कार्य करने या करवाने के लिए सहमति देकर और अपने आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करके एक आपराधिक षडयंत्र आयकर रिफंड आदेशों के रूप में किया ओर इस आपराधिक उद्देश्य से उन व्यक्तियों के नाम पर उक्त रिफंड आदेश जारी करके हासिल किया गया था जो या तो अस्तित्व में ही नहीं थे या ऐसे

रिफंड के हकदार नहीं थ अभियोजन पक्ष का यह मामला यह था कि उक्त रिफंड आदेश इस प्रकार धोखाधडी से जारी किए जाने के बाद, उन्हें धोखाधड़ी से भुनाया गया और अवैध रूप से दुरुपयोग किया गया। जिन दस व्यक्तियों के नाम पर ये रिफंड आदेश फर्जी तरीके से जारी किए गए थे, वे जी. एम. थॉमस, पी. एन. स्वामी, के. एस. पटेल, एस. आर. भंडारकर, एस. पी. जानी, डी. एम. जोशी, सी. बी. खारकर, रामनाथ गुप्ता, वी. एम. देसाई और के. वी. राव थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दस फर्जी मामलों के संबंध में पच्चीस फर्जी वाउचर जारी किए गए थे; बम्बई में विभिन्न बैंकों में धोखाधड़ी से ग्यारह खाते खोले गए और 54,000 /- रुपये की तक का गबन किया गया। वास्तव में, यही मुख्य आरोप है जो तीन आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ लगाया गया था।

उनके खिलाफ नौ अन्य सहायक आरोप भी तय किए गए। आरोप 2,3 और 4 दिनांक 7 जनवरी, 1955 को श्री जी. एम. थॉमस के पक्ष में जारी आयकर रिफंड आदेश से संबंधित हैं। अभियोजन पक्ष ने आरोप लगाया कि इस रिफंड आदेश को जारी करने के संबंध में अपने कई कृत्यों से, तीनों आरोपी व्यक्तियों ने आई.पी.सी. की धारा 467 और 471 सपठित धारा 34 के साथ-साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2) सपठित धारा 5 (1) (डी) एवं आई.पी.सी. की धारा 34 के तहत अपराध

किया था । इसी प्रकार 2 अप्रैल, 1955, श्री जी. एम. थॉमस के पक्ष में जारी आयकर रिफंड आदेश के संबंध में क्रमशः समान धाराओ के तहत आरोप 5,6 और 7 तय किए गए थे, जारी किए गए आयकर रिफंड आदेश के संबंध में 2 अप्रैल, 1955 को श्री एस.आर.भंडारकर के पक्ष में उक्त संबंधित धाराओ के तहत आरोप 8, 9 और 10 तय किए गए थे। इस प्रकार तीन आरोपियों के खिलाफ दस आरोपों का विचारण विशेष न्यायाधीश, ग्रेटर बाॅम्बे द्वारा किया गया।

इस प्रकार जाहिर होता है कि, संक्षेप में, अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि षडयंत्र के आपराधिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए, तीनों आरोपी व्यक्तियों ने सार्वजनिक खजाने को धोखा देने के लिए एक बहुत ही चतुर और सरल कार्यप्रणाली अपनाई। उन्होंने गैर-मौजूदा व्यक्तियों के नाम पर आयकर रिफंड आदेश जारी करने और उक्त रिफंड आदेशों के अनुसरण में जारी किए गए रिफंड प्रमाणपत्रों को भुनाकर राशि का दुरूपयोग करने के लिए पर्याप्त कदम उठाने का निर्णय लिया। षड्यंत्र के अग्रसरण में और सभी साजिशकर्ताओं के सामान्य आशय के अग्रसरण में, जहां भी आवश्यक हुआ, दावेदारों के रूप में उक्त काल्पनिक व्यक्तियों के जाली हस्ताक्षर करने, कुछ सहायक दस्तावेज तैयार करने और मामलों से निपटने के लिए कदम उठाए गए, हालांकि ये वास्तविक लोगों द्वारा रिटर्न जमा करने और रिफंड

के लिए दावा करने के मामले थे। इसी हथकंडे को अपनाकर सभी आरोपी 54,000 / - रूपये जैसी बडी रकम का गबन करने में सफल हुए।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब आयकर कार्यालय में रिटर्न या रिफंड आवेदन प्राप्त होता है, तो यह सबसे पहले मूल्यांकन हेतु रिफंड क्लर्क के पास जाता है, जो सामान्य तौर पर इसे आयकर अधिकारी के समक्ष आदेश के लिए रखता है। सामान्य तौर पर आयकर अधिकारी करदाता को नोटिस भेजता है, उसकी और उसके द्वारा प्रस्तुत खातों की जांच करता है कि क्या रिटर्न सही है। ऐसा करने पर, आयकर अधिकारी द्वारा एक मूल्यांकन आदेश पारित किया जाता है। इसके बाद, एक फॉर्म जिसे आई. टी. 30 फार्म के नाम से जाना जाता है, तैयार किया जाता है। इस फार्म में कई कॉलम होते हैं, जो भरने पर, निर्धारिती द्वारा देय आयकर, उसके द्वारा भुगतान किए गए कर, आयकर अधिाकारी द्वारा आदेशित रिफंड या उसके द्वारा मांगे गए संग्रह के बारे में विवरण देते हैं। इस फार्म को विधिवत भरने के बाद, इसे रिफंड आदेश तैयार करने के लिए दूसरे क्लर्क को भेजा जाता है। उस स्तर पर, रिफंड आदेश तैयार किया जाता है और उक्त आदेश को मांग और संग्रहण रजिस्टर और आई. टी. फॉर्म 30 के साथ तैयार कर आयकर अधिकारी को वापस भेजा जाता है, जो अभिलेख की जांच करता है और रिफंड आदेश आई. टी. फार्म 30 पर हस्ताक्षर करता है और मांग

एवं संग्रहण रजिस्टर में स्वयं प्रविष्टि करता है या लिखवाता है। इस समय, वह लाभांश वारंट जैसे रिफंड प्रमाणपत्र भी रद्द कर देता है। आयकर अधिकारी रिफंड लिपिक द्वारा तैयार सलाह ज्ञापन भी प्राप्त करता है और उस पर हस्ताक्षर करता है। उक्त मेमो रिजर्व बैंक को भेजा जाता है और रिफंड आदेश निर्धारिती को भेजा जाता है। रिफंड वाउचर को रिजर्व बैंक द्वारा भुनाये जाने के पश्चात सलाह ज्ञापन में आयकर कार्यालय में वापस प्राप्त किया जाता है। इसके बाद दैनिक रिफंड रजिस्टर में एक प्रविष्टि की जाती है। अभियोजन का मामला यह है कि षड्यंत्रकारियों ने धनवापसी आदेश बनाने में विभाग द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का औपचारिक रूप से पालन करने के लिए अपने आपराधिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए सभी कदम अपनाने का इरादा किया था।

इस स्तर पर, यह संक्षेप में बताना प्रासंगिक है कि अभियोजन पक्ष के अनुसार,

[1963] की धोखाधड़ी कैसे हुई, साजिशकर्ताओ की धोखाधडी किस प्रकार प्रकट हई। अप्रैल, 1955 में श्री सुंदरराजन, जो उस समय बॉम्बे शहर में आयकर आयुक्त थे, को एक रिपोर्ट मिली कि ए-III वार्ड द्वारा जारी रिफंड आदेशों के संबंध में कई अनियमितताएं की जा रही हैं। इस रिपोर्ट को प्राप्त करने पर, उन्होंने श्री घारपुरे, जो आयकर, ए-रेंज के निरीक्षण सहायक

आयुक्त थे, को आरोपी नंबर 1 के काम का कार्य का निरीक्षण करने के लिए कहा। हालाँकि, उन्होंने श्री घारपुरे को अपना काम इस तरह से करने के लिए आगाह किया जैसे कि वह सामान्य प्रक्रिया में निरीक्षण कर रहें हों ताकि आरोपी नंबर 1 के मन में कोई संदेह पैदा ना हो। श्री घारपुरे ने तदनुसार निरीक्षण किया और 6 जून, 1955 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह सामान्य आधार है कि श्री घारपुरे किसी भी धोखाधड़ी का पता लगाने में सक्षम नहीं हुए।

10 जून, 1955 को श्री सुंदरराजन ने श्री घरपुरे को ए-III वार्ड में रखी गई सभी रिफंड किताबें उनके समक्ष पेश करने के लिए कहा। तदनुसार उन्हें उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया। इन पुस्तकों की जांच करने पर, श्री सुंदरराजन को कुछ संदिग्ध विशेषताएँ मिलीं। उन्हें जी. एम. थॉमस के नाम जारी रिफंड आदेश का एक काउंटर-फॉइल मिला और उन्होंने देखा कि प्रासंगिक पावती डाक पर कोई डाक टिकट नहीं था और एक साफ और ताजा उपस्थिति प्रस्तुत की गई थी। श्री सुंदरराजन को यह संदेहास्पद प्रतीत हुआ। उन्होंने यह भी पाया कि कई रिफंड पूर्ण आंकडों में किए गए थे जो बहुत ही असामान्य थे। फाइलों से पता चलता है कि काउंटर-फॉयल के पीछे डाक पावती नहीं चिपकी हुई थी और न ही सलाह नोट चिपके हुए थे। फाइलों की इन असामान्य विशेषताओं के कारण उनका संदेह बढ गया,

श्री सुंदरराजन ने विशेष रूप से यह पता लगाने के लिए छः काउंटर फाॅइल पुस्तकों की आगे की जांच की कि क्या रिफंड आदेश पूर्ण आंकडों के संबंध में थे ओर उन्हाेंने पाया कि ऐसे रिफंड आदेश मेसर्स जी. एम. थॉमस, के. एस. पटेल, पी. एन. स्वामी, डी. एन. जोशी और एस. आर. भंडारकर के नाम से पारित किए गए थे।

रिफंड आदेश भुनाए जाने के बाद, उन्हें रिजर्व बैंक द्वारा महालेखाकार के कार्यालय भेजा गया था और इसलिए, श्री सुंदरराजन ने सोचा कि वह उन्हें उक्त कार्यालय से प्राप्त कर सकते हैं। ये सब 10 जून, 1955 की शाम को हुआ था।

11 जून, 1955 को, जो शनिवार का दिन था, श्री सुंदरराजन ने जी. एम. थॉमस और के. एस. पटेल सहित ऊपर नामित कुछ व्यक्तियों की फाइलों के साथ-साथ बीस अन्य नियमित करदातओ का की फाइलें भी मंगवाई। बीस नियमित करदातओ की फाइलें उन्हें सौंपी गई थीं, लेकिन दस काल्पनिक व्यक्तियों की नहीं। पूछने पर बताया गया कि वे फाइलें उपलब्ध नहीं हैं। उक्त फाइलों के प्रस्तुत न होने से उनके संदेह की पुष्टि हुई कि उनके संबंध में कुछ अनियमित हुआ होगा। इसलिए उन्होंने दोपहर 2 बजे आरोपी नंबर 1 को बुलाया लेकिन वह अपने कार्यालय में नहीं था। वह दोपहर 3 बजे आया, श्री सुंदरराजन ने उन्हें संबंधित काउंटर-फाॅइल

दिखाए और उनकी जाँच की। आरोपी नं. 1 द्वारा दिया गया बयान श्री सुंदरराजन द्वारा विधिवत दर्ज किया गया। उनके द्वारा की गई पूछताछ के परिणामस्वरूप, श्री सुंदरराजन इस बात से संतुष्ट थे कि तीनों आरोपी व्यक्तियों ने धोखाधड़ी से कई दस्तावेज़ों को अस्तित्व में लाया था, जिसके परिणामस्वरूप एक बड़ी राशि का गबन किया गया था, और इसलिए,उन्होंने केंद्रीय राजस्व बोर्ड से आरोपी नंबर 1 को निलंबित करने का अनुरोध किया।

उस स्तर पर, श्री सुंदरराजन स्वाभाविक रूप से ए-।।। वार्ड के कार्यालय की तलाशी लेना चाहते थे, लेकिन वह तलाशी नहीं ले सके क्योंकि उन्हें बताया गया था कि ए-।।। वार्ड कार्यालय की चाबी आरोपी नंबर 3 अपने साथ ले गया। इसके बाद उन्होंने अपने कार्यालय के पुलिस गार्ड को निर्देश दिया कि उनकी अनुमति के बिना किसी को भी ए-।।। वार्ड के कमरे में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अगले दिन, वह अपने कार्यालय में उपस्थित हुए लेकिन उन्होंने पाया कि ए-।।। वार्ड में कोई भी व्यक्ति काम पर नहीं गया था। कार्यालय छोडने से पहले उन्होंने ए-।।। वार्ड के कार्यालय को सील कर दिया और ड्यूटी पर तैनात निरीक्षक से यह कह दिया गया था कि यदि उसके बाद कोईभी व्यक्ति उस कार्यालय में काम करने आए तो उसकी सूचना उन्हें दी जाए। श्री सुंदरराजन के घर

पहुँचने के बाद, उन्हें एक टेलीफोन संदेश मिला कि आरोपी नंबर 3 चाबियों के साथ ए-III वार्ड कार्यालय आया था। श्री सुंदरराजन ने इंस्पेक्टर को निर्देश दिया कि वह आरोपी नंबर 3 से चाबियों का प्रभार ले लें और उसे अगले दिन कार्यालय में उपस्थित होने के लिए कहें।

अगला दिन सोमवार (13-6-1955) था। उस दिन, श्री सुंदरराजन कुछ अन्य अधिकारियों के साथ ए-III वार्ड के कार्यालय में गए, शील और लॉक खोला और अंदर जाने के बाद छः रजिस्टर कुर्क किए। उन्होंने प्रश्नगत दस व्यक्तियों के मूल्यांकन रिकॉर्ड की भी खोज की लेकिन उन्हें वे नहीं मिले। इसके बाद उन्होंने आरोपी नं. 1 को एक महत्वहीन प्रभार में स्थानांतरित कर दिया गया और बैंकों को निर्देश दिया कि ग्यारह खातों में से किसी से भी निकासी की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि उक्त खाते उन्हें संदिग्ध प्रतीत होते थे। फिर उन्होंने आरोपी नंबर 3 को बुलाया और उसकी जांच की। उन्होंने आरोपी नंबर 2 को भी बुलाया लेकिन वह उपलब्ध नहीं था क्योंकि वह छुट्टी पर चला गया था। उन्होंने अपने एक निरीक्षक को यह जांच करने का निर्देश दिया कि क्या उक्त दस व्यक्ति वास्तविक व्यक्ति थे या केवल काल्पनिक नाम थे। यह सब 13 जून, 1955 को हुआ।

14 जून, 1955 को, श्री सुंदरराजन आरोपी नंबर 3 के साथ ए-।।। वार्ड कार्यालय गए। वह खोये हुए कागजातों यानि संबंधित दस व्यक्तियों के मूल्यांकन रिकॉर्ड की खोज करना चाहते थे। आरोपी नंबर 3 ने कुछ समय तक इंतजार किया और फिर आरोपी नंबर 2 की टेबल खोली और कुछ कागजात निकाले। इन कागजातों की एक सूची बनाकर उन्हें अपने कब्जे में ले लिया गया। इस सूची पर श्री सुंदरराजन और उनके साथ आए अधिकारियों के साथ-साथ आरोपी नंबर 3 द्वारा हस्ताक्षर किए गए। इसके बाद, आरोपी नंबर 2 और 3 को निलंबित कर दिया गया और परिणास्वरूप इसके बाद हुई जांच में, तीनों आरोपियाेंं को पूर्ववर्णित आरोपों पर ग्रेटर बॉम्बे के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए पेश किया गया।

विद्वान विचारण न्यायाधीश के समक्ष, आरोपी नंबर 3 ने अपने खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों के लिए अपराध स्वीकार किया, जबकि आरोपी नंबर 1 और 2 ने इस बात से इनकार किया कि उन पर लगाए गए आरोपों से उनका कोई लेना-देना था।

अभियोजन पक्ष ने ए-।।। वार्ड कार्यालय में रखी फाइलों सहित संबंधित दस्तावेजों को विद्वान विचारण न्यायाधीश के समक्ष पेश करके तीनों व्यक्तियों के खिलाफ अपना मामला साबित करने की मांग की, और

प्रक्रिया को दिखाने, मूल्यांकन आदेश पारित करने और रिफंड देने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, और यह दिखाने के उद्देश्य से कि आरोपी नंबर 1 के बिना साजिश सफल नहीं हो सकती थी। विभाग से चार गवाहों को परीक्षित करवाया गया। ये गवाह हैं सुंदरराजन, पी. डब्ल्यू. 1, नागवेकर, पी. डब्ल्यू. 2, सुब्रमण्यन, पी. डब्ल्यू. 5 और डाउनक, पी. डब्ल्यू. 21। अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी व्यक्तियों की लिखावट को साबित करने के लिए दास गुप्ता, पी. डब्ल्यू. 26 को भी परीक्षित करवाया गया। आरोपी नंबर 1 द्वारा पारित रिफंड आदेशों के अनुसरण में जारी किए गए रिफंड वाउचर को भुनाने के लिए विभिन्न बैंकों में खाते खोलने के लिए उनके द्वारा उठाए गए कदमों के संबंध में आरोपी नंबर 2 और 3 की पहचान साबित करने के लिए ग्यारह अन्य गवाहाें को भी परीक्षित करवाया गया।

विद्वान विचारण न्यायाधीश ने माना कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए साक्ष्य उचित संदेह के से परे तीन आरोपियाें के बीच आपराधिक षडयंत्र के अस्तित्व को साबित नहीं करते हैं। वह यह मानने के लिए इच्छुक नहीं थे कि दस कथित व्यक्ति अस्तित्वहीन थे। फिर भी, वह इस आधार पर मामले से निपटने के लिए आगे बढे कि दस व्यक्ति गैर-करदाता थे और फिर भी उनके पक्ष में रिफंड आदेश पारित किए गए थे।

विद्वान विचारण न्यायाधीश के अनुसार आरोपी नंबर 1 ने मामलों को निपटाने की जल्दी में, अपने कर्मचारियों पर भरोसा करते हुए, संबंधित दस्तावेजों पर बिना देखे ही निर्दोष रूप से हस्ताक्षर कर दिए होंगे, और इसलिए, यह मानना मुश्किल होगा कि वह षडयंत्र का एक सदस्य था। विद्वान न्यायाधीश ने कहा, उसके खिलाफ अधिकाधिक यह तर्क दिया जा सकता है कि वह लापरवाह था। इस तरह उन्होंने आरोपी नंबर 1 को धारा 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत साजिश के मुख्य आरोप से बरी कर दिया और परिणामस्वरूप, अन्य आरोप से भी। आरोपी नंबर 2 के संबंध में, विद्वान न्यायाधीश भी इस बात से संतुष्ट नहीं थे कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रासंगिक दस्तावेजों पर उसके हस्ताक्षर साबित करने के लिए पेश किए गए सबूतों ने इस तथ्य को साबित किया हो कि उसने उन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए थे और वह अन्य सबूतों से प्रभावित नहीं था जो उसके सामने यह दिखाने के लिए पेश किए गए थे कि उसने रिफंड वाउचर भुनाने के मामले में सहायक आरोपी नंबर 3 की सहायता की। इन निष्कर्षों पर, आरोपी नंबर 2 को उसके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया गया था। चूंकि आरोपी नंबर 3 को आरोपों के लिए दोषी ठहराया था, विद्वान न्यायाधीश ने उसे आई. पी. सी. की धारा 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5 (2) के तहत दोषी ठहराया गया और उसे कारावास की विभिन्न शर्तों की सजा सुनाई गई, जिन्हें एक साथ चलाने

का आदेश दिया गया। हालाँकि, विचारण न्यायाधीश ने आरोपी संख्या 3 को आपराधिक षडयंत्र व आरोपी संख्या 1 व 2 को सभी आरोपों से दोषमुक्त किया।

विद्वान न्यायाधीश द्वारा आरोपी नंबर 1 और 2 के पक्ष में पारित किए गए बरी के आदेश के विरुद्ध, महाराष्ट्र राज्य ने बॉम्बे उच्च न्यायालय में अपील की और यह अपील सफल रही। उच्च न्यायालय ने पाया है कि विद्वान विचारण न्यायाधीश ने यह मानकर खुद को गलत दिशा दी है कि आरोपी नंबर 1 ने यह दलील दी थी कि उसने संबंधित दस्तावेजों पर लापरवाही से हस्ताक्षर किए थे और अपने कर्मचारियों पर विश्वास करते हुए जल्दबाजी में संबंधित आदेश पारित कर दिए थे। उच्च न्यायालय ने माना कि लापरवाही की बात तो दूर आरोपी नंबर 1 ने विचारण न्यायालय में दायर अपने लिखित कथन में निश्चित रूप से कहा था कि दस मामलों में रिफंड जारी करने का निर्देश देने से पहले, उन्होंने सहायक दस्तावेजों वाली फाइलों की जांच की थी और खुद को संतुष्ट किया था कि उनमें से प्रत्येक मामले में रिफंड की अनुमति देना उचित था। यह स्थिति विद्वान अधिवक्ता द्वारा स्वीकार की गई थी, जो उच्च न्यायालय में आरोपी संख्या 1 के लिए उपस्थित हुए थे। फिर उच्च न्यायालय ने इस सवाल में जांच की कि क्या दस निर्धारिती मौजूदा व्यक्ति थे या काल्पनिक नाम थे और यह निष्कर्ष

निकला कि जिन ग्यारह खातों में रिफंड आदेश पारित किए गए थे, उनके लिए दिए गए दस नाम काल्पनिक नाम थे। उच्च न्यायालय ने तब परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की जांच की, जिस पर अभियोजन पक्ष ने तीन आरोपी व्यक्तियों के बीच षडयंत्र के मुख्य आरोप के समर्थन और सबूत पर भरोसा किया और यह निष्कर्ष निकला कि सभी तीन आरोपियों के खिलाफ उक्त आरोप उचित सीमा में संदेह से परे साबित हो गया है। इस प्रकार उच्च न्यायालय ने राज्य द्वारा की गई अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया और तीनों आरोपियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत दोषी ठहराया। उच्च न्यायालय ने आरोपी नंबर 2 को भी आई पी सी की धारा 467 , 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम धारा 5(2) के तहत अपराध का दोषी ठहराया। अन्य अपराधों के संबंध में दोषमुक्ति के आदेश की पुष्टि की गई। भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी के तहत आरोपी नंबर 1 और 2 को दोषी ठहराते हुए, उच्च न्यायालय ने उनमें से प्रत्येक को उक्त अपराध के लिए 18 महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई है। आरोपी नं. 2 को भी भारतीय दंड संहिता की धारा 467, 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) के तहत प्रत्येक अपराध के संबंध में 18 महीने के लिए दंड भुगतने का निर्देश दिया गया, इस सजा को भारतीय दंड संहिता की धारा 120 - बी के तहत दी गईसजा के साथ-साथ चलाने का आदेश दिया गया। यह अपील उच्च न्यायालय द्वारा पारित

दोषसिद्धि और सजा के इस आदेश के खिलाफ है और आरोपी नंबर 1 और 2 अपनी 1959 की अपील संख्या 176, और 1960 की अपील संख्या 40, द्वारा विशेष अनुमति के माध्यम से इस न्यायालय में उपस्थित हुए हैं।

चूंकि अपीलार्थियों के बरी होने के खिलाफ अपील की सुनवाई करते समय उच्च न्यायालय ने आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 423 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलार्थियों के खिलाफ दोषसिद्धि और सजा का आदेश पारित किया था,इसलिए पहला प्रश्न जो हमारे नर्णय की मांग करता है वह अपील में बरी करने के आदेशों में हस्तक्षेप करने वाली उच्च न्यायालय की शक्तियों की सीमा से संबंधित है। इस प्रश्न पर पिवी काउंसिल और इस न्यायालय दोनों द्वारा कर् कोई न्यायिक निर्णयों में चर्चा और विचार किया गया है। धारा 423 में निहित प्रासंगिक प्रावधानों के वास्तविक दायरे और प्रभाव के बारे में संदेह पैदा होने की संभावना है। इसलिए, हम उस बिंदु से निपटने और स्थिति संक्षेप में बताने का प्रस्ताव करते हैं।

धारा 423 (1) अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अपीलों के निपटान में अपीलीय न्यायालय की शक्तियों को निर्धारित करती है और खंड (ए) और (बी) क्रमशः दोषमुक्ति के खिलाफ अपील और दोषसिद्धि के खिलाफ अपील से संबंधित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि खंड (ए) द्वारा

प्रदत्त शक्ति, जो दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील से संबंधित है, खंड (बी) द्वारा प्रदत्त शक्ति जितनी ही व्यापक है, जो दोषसिद्धि के आदेश के खिलाफ अपील से संबंधित है, और इसलिए, यह स्पष्ट है कि आपराधिक अपीलों से निपटने में उच्च न्यायालय की शक्तियां समान रूप से व्यापक हैं चाहे विचाराधीन अपील दोषमुक्ति के खिलाफ हो या दोषसिद्धि के खिलाफ। यह प्रश्न का एक पहलू है। प्रश्न का दूसरा पहलू उस दृष्टिकोण पर केंद्रित है जिसे उच्च न्यायालय बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील से निपटने के लिए अपनाता है। ऐसे अपीलों से निपटने की उपधारणा को ध्यान में रखता है और इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकता है कि उक्त उपधारणा विचारण न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में पारित बरी के आदेश से मजबूत होती है। वास्तविक आरोपी व्यक्ति उचित संदेह का लाभ पाने का हकदार है, यह तथ्य उच्च न्यायालय के दिमाग में हमेशा मौजूद रहेगा जब वह मामले के गुणों पर विचार करेगा। एक अपीलीय न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय आम तौर पर विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्ष को विक्षुब्ध करने में धीमा होता है, खासकर जब उक्त निष्कर्ष मौखिक साक्ष्य के विवेचन पर आधारित होता है क्योंकि विचारण न्यायालय के पास जिन गवाहों के विवेचन ने साक्ष्य दी है, के व्यवहार को देखने का अवसर होता है। इस प्रकार, हालांकि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील से निपटने में उच्च न्यायालय की शक्तियां उतनी ही व्यापक हैं जितनी कि दोषसिद्धि

के विरुद्ध अपील से निपटने में, पूर्व वर्ग की अपीलों निपटने में, इसका दृष्टिकोण निर्दोषता की उपधारणा से निकलने वाले अधिभावी विचार द्वारा शासित होता है। कभी-कभी, शक्ति की व्यापकता पर जोर दिया जाता है, जबकि अन्य अवसरों पर, दोषमुक्त किए गए लोगों के खिलाफ अपील से निपटने में सतर्क दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है, और यह जोर समय-समय पर उपयोग किए जाने वाले विभिन्न शब्दों या वाक्यांशों में व्यक्त किया जाता है। परंतु वास्तविक कानूनी स्थिति यह है कि बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील से निपटने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण कितना भी एहतियाति और सतर्क क्यों न हो, वह निस्संदेह अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सबूतों के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकारी है। अभियुक्त का अपराध या निर्दाेषता। यह स्थिति प्रिवी काउंसिल द्वारा शिव स्वरूप बनाम द किंग एम्परर(1) और नूर मोहम्मद बनाम एम्परर (2) मामले में।

हालाँकि, इस न्यायालय पूर्व में पारित कुछ निर्णयों में, बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील से निपटने में सतर्क दृष्टिकोण अपनाने के महत्व पर जोर देते हुए, यह देखा गया था कि निर्दाेषता की धारणा को बरी करने के आदेश से प्रबलित किया जाता है और इसलिए विचारण न्यायालय

के निष्कर्ष जिसमें गवाहों को देखने और उनके साक्ष्य सुनने का अवसर था को केवल संतोषजनक व सम्मोहक कारणों से अपास्त किया जा सकता है।

(1) (1934) एल. आर. 61 आई. ए. 398 (2) ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 151.

सूरजपाल सिंह बनाम राज्य (1) के मामले में इसी प्रकार अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (2), यह देखा गया कि बरी के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय का हस्तक्षेप केवल तभी न्यायोचित होगा जबकि उच्च न्यायालय के पास ऐसे करने के लिए बहुत ठोस और बाध्यकारी कारण हो।" कुछ अन्य निर्णयों में यह कहा गया है कि बरी करने का आदेश केवल "अच्छे और पर्याप्त रूप् से ठोस कारणों" या "मजबूत कारणों" के लिए उलटा किया जा सकता है। इन टिप्पणियों के प्रभाव का विवेचन करते समय, यह याद रखना चाहिए कि इन टिप्पणियों का उद्देश्य एक कठोर या अनम्य नियम बनाना नहीं था जो बरी किए गए लोगों के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय के निर्णय को नियंत्रित करे। इन टिप्पणियों का उद्देश्य संहिता की धारा 423 (1) के खंड (क) में अतिरिक्त शर्तें समाविष्ट करना नहीं था और ना ही इन्हें इस उद्देश्य से देखा जाना चाहिए। उक्त टिप्पणियों पर जोर देने का उद्देश्य यह है कि दोषमुक्ति के विरूद्ध अपील से निपटने में उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण सावधानीपूर्वक

होना चाहिए क्योंकि जैसा कि लॉर्ड रसेल ने शिव स्वरूप के मामले में टिप्पणी की है, आरोपी पक्ष में निर्दोषता की धारणा "निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं होती है कि उसे विचारण में बरी कर दिया गया है।" इसलिए, परीक्षण के सुझाव हेतु, अभिव्यक्ति "पर्याप्त और सम्मोहक कारणों" को एक सूत्र के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए जिसे हर मामले में कठाेरता से लागू करना होगा। यह इस न्यायालय के हालिया निर्णयों को प्रभाव है उदाहरण के लिए, सांवत सिंह बनाम राजस्थान राज्य (3), और हरबंस सिंह बनाम पंजाब राज्य (4); और इसलिए, यह आवश्यक नहीं है कि उलटने से पहले दोषमुक्ति के फैसले में, उच्च न्यायालय को अनिवार्य रूप से उसमे दर्ज निष्कर्षों को विकृत बताना चाहिए। इसलिए, वर्तमान अपीलों में हमें खुद से यह सवाल पूछना है कि क्या अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत सामग्री पर, उच्च न्यायालय का इस निष्कर्ष पर पहुंचना उचित था कि-(1) (195) एस. सी. आर. 193,201

(2) (1953) एस. सी. आर. 418

(3) (1961) 3 एस. सी. आर. आई 120

(4) (1962) पूरक. आई. एस. सी. आर. 101 2 एस. सी. आर.

अपीलार्थियों के खिलाफ अभियोजन का मामला एक उचित संदेह से परे साबित हुआ था, और विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया विपरीत

दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण था। इस प्रश्न का जवाब देने में,निस्संदेह, हम उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के विरुद्ध अपीलार्थियों द्वारा की गई शिकायत का विवेचन करने के लिए साक्ष्य की मुख्य और व्यापक विशेषताओं पर विचार करेंगे। परंतु अनुच्छेद 136 के तहत हम आम तौर पर उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए अनिच्छुक होंगे, विशेष रूप से जहाँ उक्त निष्कर्ष मौखिक साक्ष्य के विवेचन पर आधारित हैं।

इस प्रकरण में साक्ष्य विवेचन से पूर्व विधि के एक अन्य बिंदु पर भी विचार किया जाना उचित होगा। आरोपी नंबर 1 के विरुद्ध अभियोजन पक्ष का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। धारा 120-बी के तहत षडयंत्र का मुख्य आरोप साजिशकर्ताओं के कथित आचरण से स्थापित करने की कोशिश की गईहै और जहां तक आरोपी नंबर 1 का सवाल है, यह केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। आपराधिक न्यायशास्त्र में यह सुस्थापित नियम है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य को उचित रूप से किसी आरोपी व्यक्ति की सजा का आधार बनाया जा सकता है यदि यह इस तरह का है कि यह आरोपी की बेगुनाही के साथ पूरी तरह से असंगत है और केवल उसके अपराध के अनुरूप है। यदि मामले में साबित परिस्थितियाँ या तो अभियुक्त की बेगुनाही या उसके अपराध के

अनुरूप हैं, तो अभियुक्त संदेह का लाभ पाने का हकदार है। इस स्थिति को लेकर कोई संदेह या विवाद नहीं है। लेकिन इस सिद्धांत को लागू करने में एक ओर प्राथमिक या बुनियादी कहे जा सकने वाले तथ्यों और दूसरी ओर उनसे निकाले जाने वाले तथ्यों के अनुमान के बीच का अंतर करना आवश्यक है। बुनियादी या प्राथमिक तथ्यों के प्रमाण के संबंध में न्यायालय को साक्ष्य का मूलयांकन सामान्य तरीके से करना होता है, और इन बुनियादी या प्राथमिक तथ्यों के प्रमाण के संबंध में साक्ष्य के विवेचन संदेह के लाभ का सिद्धांत लागू होने की गुंजाइश नहीं होती।

न्यायालय साक्ष्यों पर विचार करता है और निर्णय करता है कि क्या वे साक्ष्य एक विशेष तथ्य साबित करते हैं या नहीं। जब यह माना जाता है कि एक निश्चित तथ्य साबित हो गया है, तो सवाल उठता है कि क्या इस तथ्य से आरोपी व्यक्ति के अपराध का अनुमान लगाया जा सकता है या नहीं, और समस्या के इस पहलू से निपटने में, संदेह के लाभ का सिद्धांत लागू होगा और एक अपराध का अनुमान तभी लगाया जा सकता है जब सिद्ध तथ्य अभियुक्त की बेगुनाही से पूरी तरह से असंगत हो और केवल उसके अपराध के अनुरूप हो। इस कानूनी स्थिति के प्रकाश में वर्तमान मामले में साक्ष्य का विवेचन किया जाना चाहिए। इसके बाद न्यायालय ने

साक्ष्यों और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों पर विचार किया और अपीलें खारिज कर दीं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक **दीपक कुमार(न्यायिक अधिकारी)**द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः-यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंगेे्रजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।